IJNRD.ORG ISSN : 2456-4184
INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD) | IJNRD.ORG
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भारतीय वाङ्मय में राम तत्त्व

Dr. Radheshyam mundra

Assistant professor

Government college Tantoti (Kekri)

ऋग्वेद में दशरथ तथा श्रीराम और अथर्ववेद में दशानन का नामोल्लेख हुआ है। राम पूर्व तापिनीय उपनिषद्, रामउत्तर तापिनीय उपनिषद् तथा सीतोपनिषद में रामकथा से सम्बन्धित प्रायः सभी घटनाओं का वर्णन किया गया है। संस्कृत भाषा में प्रणीत रामायणों, पुराणों एवं ललित साहित्यों में श्रीराम का विस्तारपूर्वक गुणगान किया गया है।

पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश में भी श्री राम कथा लिखी गई है। हिन्दी भाषा में अनेक राम – काव्यों का प्रणयन किया गया है। इसके अतिरिक्त भारत वर्ष की अन्य आधुनिक भाषाओं में भी रामायणों तथा राम – काव्यों की रचना की गई है।

1. राम तत्त्व निदर्शन – निराकार एवं साकार स्वरूप में राम

'भक्तिकाल' से बहुत पहले ही समाज में व्याप्त दोषों के परिमार्जन के लिए भक्ति के एक ऐसे स्वरूप की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी जो सभी वर्गों के लिए उदार, सहज, सुगम तथा सुलभ हो, पाखण्ड, आडम्बर, भेदभाव, संकीर्णता, भटकाव, दुराव– छिपाव से रहित हो, जो समाज हितकारी एवं मर्यादित हो एवं जो धर्म को सरल, स्पष्ट एवं सर्वग्राह्य बनाने में सहायक हो।

विक्रम की नवीं शताब्दी के लगभग भारत मे सुधावरवादी प्रयास आरम्भ गए थ। उत्तर भारत में भक्ति और दर्शन की जो धाराएँ प्रवाहित हुई, कालान्तर में उनमें आन्तरिक और बाह्य कई

परिवर्तन हुए। वैदिक उपासना पद्धति की प्रतिक्रियास्वरूप बौद्व एवं जैन धर्मों की अनीश्वरवादी साधनाओं का आविर्भाव हुआ बाद में उनमें भी विभिन्न मत– मतान्तर उत्पन्न हुए।

सिद्धों नाथों तथा वैष्णवों के इन आडम्बरपूर्ण तथा भ्रमित करने वाले मतों के अलावा उस समय सूफी सम्प्रदाय का भी प्रसार हो चला था।ईसा की बारहवीं शताब्दी में

'सफी अल्हुज्विरी' के आगमन से भारत में सूफी सम्प्रदाय का प्रचार हुआ। ''आईने अकबरी'' में सूफियों के चौदह सम्प्रदायों का उल्लेख है, जिनमें प्रसिद्व ये है – कादरी सम्प्रदाय, सुहरावर्दी सम्प्रदाय नक्शबंदी तथा चिश्ती सम्प्रदाय। सूफी सम्प्रदाय के कवियों ने कल्पित हिन्दू राजाओं की कहानियों के द्वारा लैकिक प्रेम के बहाने उस प्रेम–मार्ग का महत्त्व बताया जो साधक को अपने प्रियतम ईश्वर से मिलता है। सूफियों का प्रेम दर्शन 'इश्के हकीकी' इस अर्थ से बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ कि उसने राग साधना की मासलंता के प्रचार–प्रसार पर रोक लगायी तथा वैष्णावाचार्यो की भी सतर्क एवं उत्प्रेरित किया। सूफियों ने 'राग – तत्त्व को 'अनुराग – रूप' में ग्रहण किया तथा उसे 'लीला' से सम्बद्ध कर लिया, किन्तु यह 'अनुराग–लीला' धर्म के क्षेत्र में जितनी सम्मानित हुई, आगे चलकर अपनी विकृतियों और कुत्साओं में वह उतनी ही गर्हित भी सिद्ध हुई। लौकिक कथाओं को ईश्वर प्राप्ति का माध्यम बनाने के प्रयास में सूफी काव्यों में नायिक के मांसल सौन्दर्य, रति तथा काम केलियों का वर्णन ही प्रमुखता से होने लगा। फलतः जन सामान्य इस और भी उदासीन ही रहा।

मध्यकालीन समाज में व्याप्त धार्मिक और सामाजिक अव्यवस्था को सुधारने के लिए रामानन्द स्वामी ने भक्तिमार्ग को उदार बनाकर जिस रामोपासना का मार्ग प्रशस्त किया था, कबीर ने उसे और भी अधिक उदार तथा सर्वग्राह्य बनाने के लिए निर्गुण राम को अपना आराध्य बनाया। निर्गुण राम को आराध्य बनाकर कबीर ने न केवल स्वधर्मियों द्वारा हेय समझे जाने वाले निम्न वर्गों को, अपितु पाखण्ड, आडम्बरों एवं रूढियों से ग्रस्त इतर धर्मो के असंतुष्ट अनुयायियों को भी भक्ति का सहज, सुगम, सर्व–सुलभ और आडम्बरविहीन मार्ग दिखाया। कबीर के इस सहज भक्तिमार्ग द्वारा धर्मो की विविधिता से किंकर्तव्यविमूढ़ हुए

भारतीय समाज को तो स्थिर दिशा मिली ही साथ ही धर्म, जाति, वर्ग, सम्प्रदाय से परे इस निराकार परबह्म को अपना आराध्य बनाने मे

पेज नं. 03

उच्च वर्ग से प्रताड़ित तथा उपेक्षित सभी धर्मावलम्बियों को भी कोई झिझक नहीं हुई। इस प्रकार कबीर ने धार्मिक – ऐक्य तथा सामाजिक – सुधार की भावना को दृष्टि में रखते हुए राम–रहीम की एकता के प्रतीक निर्गुण राम की प्रतिष्ठा की।

समाज–हितकारी एवं सर्व सुलभ होने के कारण कबीर की इस निर्गुण–रामोपासना का व्यापक प्रचार–प्रसार हुआ। राम को आराध्य बनाकर कबीर ने जिस निर्गुण – भक्ति का अलख जगाया वह न केवल कबीर के समकालीन रैदास जैसे सन्तो में दृष्टि गोचर होता है, अपित् उत्तरकालीन सन्त दादू तथा राजस्थान के रामस्नेही सन्तों – दरिया साहब, सन्त हरिरामदास, सन्त रामदास सन्त दयालदास, सन्त रामचरण, सन्त रामजन, सन्त दूल्हैराम, सन्त सुखराम, सन्त अभाँबाई आदि पर भी इसका गहरा प्रभाव देखा जा सकता है।

कबीर, रैदास, दादू तथा राजस्थान के रामसनेही सन्तों ने जिस राम को अपना आराध्य बनाया है, वह राम दाशरथि राम नहीं है, वरन् वह तो परब्रह्म का पर्याय है। वह परब्रह्म राम अजन्मा है इसलिए वह अवतार ग्रहण नहीं करता। वह अजर, अमर, अखण्डित और अविनाशी है। आदि–अन्त से रहित वह परब्रह्म राम ही सृष्टि का कर्त्ता–धर्ता, सृजनहार, नियामक, पालक, पोषक तथा संहारक है। त्रिलोक और त्रिलोक से अतीत वह तत्त्व अनुपम और विलक्षण है जिसका मर्म कोई नहीं जान पाता। वह परब्रह्म राम सर्वातीत, अगम्य, अगोचर, अलख, अकथ्य, अनिर्वचनीय तथा अवर्णनीय है। वह निर्गुण–निराकार राम तो अनुभवैकगम्य है। वहो परम सत्य है, जगत में जो कुछ भी सत्य, रमणीय तथा कल्याणकारी है, वह निर्गुण राम ही है। वह सत्यस्वरूपी राम निरन्जन है। माया के तीनों गुणों से परे वह निरन्जन राम रूप–रेख – रंग–आकार से रहित है। वह अलेख परब्रह्म असीम तथा सर्वव्यापी है। सत्यभासित होने वाला वह जगत् तो प्रत्यक्षतः नाशवान है अतः मिथ्या हैं। वह परब्रह्म ही सारपूर्ण, स्थायी, नित्य तथा शास्वत है। वह परब्रह्म राम ही

समस्त दुःखों का नाश करने वाला तथा मुक्तिदाता है। इसलिए प्राणियों को अन्य समस्त प्रपञ्चों को त्यागकर ब्रह्मप्राप्ति का प्रयास करना चाहिए।

इन निर्गुणोपासक सन्तों ने ब्रह्म–प्राप्ति के लिए नाम–स्मरण पर बल देते हुए उपासना के क्षेत्र में सहज साधना द्वारा घट ही में व्याप्त उस परम ज्योति के दर्शन करने का उपदेश दिया है। तीर्थादि भ्रमण, पर्वस्नान, उपवास–रोजा, मूर्ति–पूजा, विधि – विधान, नाना भाँति के बाह्यडम्बरों की व्यर्थता सिद्ध की है। वह परब्रह्म राम तो घट–घट में एक साथ रमण कर रहा है इसलिए इन सन्तों ने आचरण की शुद्वता पर बल देते हुए 'सर्वभूतहिते रताः' की भावना को प्रमुखता दी है।

अन्ततः कहा जा सकता है कि कबीर, रैदास, दादू तथा रामस्नेही सन्तों की यह साधना उनकी सामाजिक उपादेयता को ही सिद्ध करती है। राम के निर्गुण रूप को उपास्य बनाने के मूल में उनका सामाजिक दृष्टिकोण ही लक्षित होता है। वस्तुतः इन सन्तों ने भटके हुए भारतीय जन– मानस को हृदयस्थ परमात्मा के दर्शन के माध्यम से नई राह दिखाई है।

जिस युग में तुलसीदास का आविर्भाव हुआ था, वह धार्मिक– सामाजिक अस्थिरता का युग था। देश का धार्मिक क्षेत्र नाना सम्प्रदायों एवं अखाड़ों से भर चुका था। निर्गुण सन्तो के अनुयायियों ने विभिन्न पंथो और सम्प्रदायों की स्थापना कर ली थी, यथा–कबीर पथं, सेनपंथ, रैदासी सम्प्रदाय, नानक पंथ, साध सम्प्रदाय, लालपंथ, दादूपंथ निरंजनी सम्प्रदाय, बावरीपंथ, मलूकपंथ आदि। कबीर आदि निर्गुण सन्तों ने परब्रह्म प्राप्ति का सहज मार्ग प्रशस्त किया था। आगे चलकर उनके अयोग्य एवं अनधिकारी शिष्यों ने उसमें भटकाव की स्थिति उत्पन्न कर दी। वे अज्ञानी निर्गुणोपासना के मर्म के कारण अपरिचित होने के कारण जन–मानस को मूल उद्देश्य से तो विमुख कर ही रहे थे, साथ ही मूढ़ जनता को लौकिक कर्त्तव्यों से भी विचलित कर रहे थे। जिस अवतारवाद

का विरोध निर्गुण सन्तों ने यह सोचकर किया था कि ''उसके द्वारा नर–पूजा का विधान हो जाने कारण धर्म में पाखण्ड को घुसने का मार्ग मिल जाता है।'' १ अवतारवाद–विरोध को भूलकर ''निर्गुण सन्तों के अनुयायियों ने उन्हें ही अवतार बनाकर उनकी पूजा आरम्भ कर दी।'' २

सहजयानी सिंद्वों और नाथपंथी योगियों का भी पर्याप्त प्रभाव उस युग के समाज पर था। भक्ति–मार्ग से सर्वथा अपरिचित ये योगी और साधक तरह–तरह की करामातें दिखाकर अशिक्षित वर्ग पर अपना प्रभाव जमा रहे थे। नाना प्रकार के साधकों में योगियों की विशेष महिमा थी, इसी से योग–मार्गियों के जोग जगाने की बड़ी धूम थी –

गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग,
निगम नियोग ते सो केलि ही छरो सो हैं। ३

विशाल जटा और नाखूनों से विकट पेश बनाये रखने वाले इन योगियों की बड़ी प्रतिष्ठा थी, वे भारी तपस्वी माने जाते थे।

जाके नख अरू जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्व कलिकाला ॥ ४

तथा

असुभ वेष, भूषन धरे भच्छाभच्छ जे खाहिं।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं ॥ ५

तुलसी के पूर्व ही सूफियों का प्रभाव भी भारत पर बहुत फैल चुका था। इस युग में उनके अनेक सम्प्रदाय और उपसम्प्रदाय थे– चिश्तिया, सुहर्वर्दिया, कादरिया, नक्शबंदिया आदि। दार्शनिक दृष्टि से अद्वैतवादी इन सूफियों के विचार यद्यपि वेदान्त –सम्मत थे

किन्त इनका मूल स्त्रोत इस्लाम था। ये ''कुरान'' आदि को प्रमाण मानकर चले थे। इन्होंने परमात्मा को प्रेमी आत्मा को कामरति का आलम्बन बनाकर नारी रूप में अंकित किया।

तुलसी के युग में कृष्णभक्ति प्रचार भी बड़े उत्साह और मधुर भावना के साथ हो रहा था। वल्लभ, निम्बार्क, राधावल्लभ, हरिदासी और चैतन्य (गौड़ीय) सम्प्रदायों ने कृष्णभक्ति शाखा का दार्शनिक आधार प्रस्तुत किया। इन सम्प्रदायों का केन्द्र वृन्दावन था। देश के विभिन्न भागों के अनेक दार्शनिकों ने इस ब्रजमण्डल को अपना निवास स्थान बनाया। इन कृष्णभक्त दार्शनिकों का भक्तिदर्शन वेदांती था। किन्तु इनकी दृष्टि भगवान की सौन्दर्य–विभूति और लोकरंजन पर ही केन्द्रित रही, ईश्वर के लोकमंगलकारी रूप की प्रायः उपेक्षा ही की गयी।

राधा–कृष्ण की युगलोपासना, रासलीला, नित्यविहार आदि का ही विशेष चित्रण किया गया। इन मधुररस प्रेमी भक्तों के द्वारा "उपास्य और उपासक के सम्बन्ध की ही गूढ़तिगूढ़ व्यजंना हुई, दूसरे प्रकार लोकव्यापक नाना सम्बन्धों के कल्याणकारी सौन्दर्य की प्रतिष्ठा नहीं हुई।"

इन विभिन्न भक्ति धाराओं के अतिरिक्त हिन्दू धर्म के तीन मुख्य सम्प्रदाय वैष्णव, शैव और शाक्त भी उस समय समाज पर अपना विशेष प्रभाव डालने के लिए प्रयासरत थें। इन तीनों सम्प्रदायों में पारस्परिक विरोध इतना तीव्र था कि साधरणसी बात को लेकर भी प्रायः रक्तपात की नौबत आ जाया करती थी। शाक्त–सम्प्रदाय में शक्ति के रूप में प्रकृति, स्त्री या देवी की उपासना प्रमुख थी। इसके भी दक्षिण–पंक्षी और वाम–पक्षी दो भेद हो गये थे। इनमे वाम–पक्षियों ने मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन इन पाँच विकारों की उपासना शुरू की। एक और तो यह शाक्त धर्मब्राह्य आचरण कर भ्रष्टता को प्रश्रय दे रहे थे, साथ ही दूसरी और शिव की नगरी काशी मे शैवों का वैष्णवों से निरन्तर संघर्ष हो रहा था। वस्तुतः उस युग में शैव, वैष्णव और शाक्त सत्प्रदायों में परस्पर प्रतिस्पर्धा, प्रतिद्वन्द्विता के फलस्वरूप मनोमालिन्य और द्वेष बहुत बढ़ गए थे।

साहित्यिक शक्ति का प्रवाह भी तत्कालीन युग में पतोन्मुख था। मुगल सम्राट के आश्रित कवियों ने प्रधानतया श्रृंगार, वीर रस तथा नीति की कविताओं की रचना करने मे ही अपना ध्यान लगाया। इन कवियों की श्रृंगारिक रचनाओ में संयोग और वियोग का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन दृष्टिगोचर होता है। नख – शिख वर्णन भी श्रृगांरी कविताओं का प्रधान विषय था। इसके आतरिक्त वीर काव्यों के अन्तर्गत जिस वीरता की व्यन्जंना तत्कालीन कवियों की कृतियों मे हुई है, उसमे आश्रयदाता राजा, महाराजा या सरदारों की चाटुकारिता ही विशेष रूप से दिखाई देती है। सार्वभौमिकता का उसमे सर्वथा अभाव है। नीति विषयक रचनाओं मे भी रहीम के अतिरिक्त अन्य अधिकांश कवियों की प्रवृत्ति सामान्य नीति को छोड़ वाक्चातुरी, विनोद–हास्य आदि की ओर ही रही है। इन सूक्तियों मे गहरे अनुभवों के साथ हृदय की मार्मिकता का सम्बन्ध बहुत कम दिखाई देता है। लोक–हितार्थ, धर्म–संस्थापनार्थ कोई भी प्रयास इन दरबारी कवियों द्वारा नहीं हुआ। इनकी दरबारी प्रवृत्ति की गोस्वामी तुलसीदास ने संकेत से निंदा की है।

कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना।
सिर धुनि गिरा लागि पछिताना। ६

गोस्वामो तुलसीदास अपने समकालीन कवियों की भाँति राजाश्रित कवि नहीं बने। राम के अतिरिक्त और किसी राजा– महाराजा को प्रसन्न कर उससे किसी की याचना को उन्होंने विगर्हित समझा –

जाँचे को नरेस, देस देस को कलेस करैं।
दैहै प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाई बौंडिये ।।

कृपायाथनाथ लोकनाय नाथ सीतानाथ,
तजि रघुनाथ हाथ और काहिं ओडिय? ७
पेज नं. 08

कहने का तात्पर्य यह है तुलसी के समय युग राजनीतिक पराभाव का युग तो था ही, उस समय का समाज नैतिक, धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से भी ह्वासोन्मुख था।

य्गीन धार्मिक एवं सामाजिक अस्थिरता के सुधार का उद्देश्य दृष्टि में रखकर भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास ने जिस सगुण रामोपासना का मार्ग प्रशस्त किया उसने न केवल दिग्भ्रमित हुई तात्कालिक जनता को भक्ति का सुगम मार्ग दिखाया वरन् भ्रष्ट होती सामाजिक व्यवस्था के समक्ष मर्यादापुरूषोत्तम राम का आर्दश रूप प्रस्तुत कर जन–सामान्य को उच्च मनोभाव ग्रहण करने हेतु प्रोत्साहित भी किया।

रघुवंशमणी दशरथतनय कौसल्यानन्दन श्रीरामचन्द्र परम आराध्य हैं। वे लोकरक्षक, सर्वसद्गुणसम्पन्न, परम आर्दश, मानव – शिरोमणि होने के साथ ही स्वमहिमा में स्थित महामानव है और साथ ही वे सच्चिद् प्रेमानन्दन् घन, अवतारी, अचिन्त्यमहिम, चिदानन्दविग्रह एवं जीवों के हृदय मे विभाजन अन्तर्यामी परब्रह्म है। वे ही सृष्टि के कर्त्ता, भोक्ता और सहांरकर्त्ता हैं। इस प्रकार राम निर्गुण ब्रह्म भी है और सगुण ब्रह्म भी है। उनक ये दोनों ही स्वरूप सत्य है, परमार्थिक हैं। वस्तुतः उस अनवद्य, अखण्ड, अगोचर, सर्व–प्रकाशक, सर्व–व्यापक, विश्वात्मा, परमात्मा, परात्पर निर्गुण परब्रह्म को सगुण आधार दिये बिना भक्ति का आह्लाद मुखर भी तो नहीं हो सकता, अतः उस निर्गुण परब्रह्म का तादात्म्य अपने आराध्य

दाशरथि राम से करके श्रीरामचन्द्र मे महाविष्णुत्व की स्थापना की है। इस प्रकार राम मे मानव का ईश्वरीकरण और ईश्वर का मानवीकरण हुआ है।

सगुणु रामोपासना के व्यापक प्रचार–प्रसार के फलस्वरुप वल्लभाचार्य, सूरदास, परमानन्ददास एवं नन्ददास आदि कुष्णोपासक भी रामभक्ति से प्रभावित हुए उन्होंने राम को कृष्ण की ही भाँति विष्णु का अवतार मानकर उनकी उपासना की एवं उनकी लीला के पद गाए।

मरुधरा–मन्दाकिनी कृष्ण प्रेम दीवानी मीराँबाई भी रामभक्ति के प्रभाव से अद्दुती नहीं रह सकी। यहीं कारण है कि कृष्ण–प्रेम में सराबोर होने पर भी उनके पदों मे राम के प्रति उपास्य भाव देखा जा सकता है। मीरां के लिए कृष्ण और राम में कोई भेद नहीं है। उन्होंने अभेद दृष्टि रखकर दोनों रूपों का लीला–गान किया है। उनके राम निर्गुण–सगुण दोनों है। निराकार रूप मे वे परब्रह्म है और साकार रूप मे वे कौशल्या के पुत्ररूप मे प्रकट हुए भक्तों का कल्याण करने वाले वे प्रभु अविनाशी है, घट–घट मे व्याप्त है। माधुर्य–भाव की उपासिका होने के कारण मीरां की भक्ति मे मधुर उपासना के दर्शन भी होते हैं। इस कारण वे राम को अपने भरतार रूप मे भी देखती हैं।

तुलसी प्रवर्तित रामोपासना का प्रभाव मध्यकालीन अन्य राम कवियों यथा – रहीम, केशवदास, सेनापति तथा पद्माकर पर भी स्पष्टतया देखा जा सकता है। केशवदास के अतिरिक्त अन्य तीनों भक्त कवियों के राम महाविष्णुत्व रूप होने के कारण अद्भुत दिव्य शक्तिसम्पन्न रूप में चित्रित हुए हैं, जबकि केशवदास ने राम को वाल्मीकि के राम की भाँति महामानव के रूप में प्रस्तुत किया है। यद्यपि अन्य भक्त कवियों की भाँति केशव के राम भी परब्रह्म का साकार रूप ही है। और अधर्म के विनाशार्थ धरा पर अवतरित हुए हैं। तथापि केशव ने राम को आदर्श की अपेक्षा यथार्थ रूप में ही अधिक देखा है। उनके राम मानवीय दुर्बलताओं से युक्त एक राजा है तथापि वे लोकधर्मरक्षक है।

सारांशतः – इन समस्त भक्त कवियों ने परब्रह्म राम के साकार रूप की कल्पना दशरथसुत श्रीरामचन्द्र के रूप मे की है। इनके राम अद्भुत रूपवान, शक्तिसम्पन्न एवं परम् सामर्थ्यशाली हैं। वे परम दयालु, शरणागतरक्षक, भक्तवत्सल, भक्तों के प्रेम के वशीभूत होकर लोकानुरंजन के लिए पृथ्वी पर श्रीराम रूप में प्रकट हुए हैं।

सन्दर्भ

१. तुलसी ग्रन्थावली – दूसरा खण्ड, सम्पादक – रामचन्द्र शुक्ल, भगवान दीन, ब्रजरत्नदास; कवितावली, उत्तरकाण्ड, छन्द – 84

२. रामचरित मानस उत्तरकाण्ड, 98/8,

३. वहीं, दोहा 98

४. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, डॉ. शिवकुमार शर्मा, पृ. संख्या 216

५. तुलसी ग्रन्थावली – दूसरा खण्ड, सम्पादक – रामचन्द्र शुक्ल, भगवान दीन, ब्रजरत्नदास; कवितावली, उत्तरकाण्ड, छन्द–25

६. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 136

७. हिन्दी साहित्य इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृ. 137

International Research Journal
IJNRD
Research Through Innovation